जाता है ।
र्माण किया है जो
सार के कार्यों में तन-

वश्यकता है ऐसे निर्माणों की । पु
त्वपूण समाज एवं राष्ट्र का निर्माण करना है
बिना आप सबके सहयोग के कदापि सम्भव नहीं हैं ।
से हमारी संस्था को वह आर्थिक सहयोग नाम-मा
ी इसके लिए परम अपेक्षित है ।
संस्था के विकास हेतु एक नवीन भूमि खरी
उण्ड्रीवाल) नष्ट-प्राय है । नवीन प्राचीर बन
र रु० का व्यय है । कन्याओं की संस्था में वृद्धि
कमरे, स्नानागार, शौचालय आदि के निर्माण की

ार्य जगत् में अच्छी मानी जाने वाली इस संस्थ
क संकट भार को आप लोग शीघ्र दूर करें ।
याओं की सुरक्षा, पालन-पोषण, अध्ययन-अध्याप
इसमें किसी प्रकार का अवरोध उपस्थित न हो
भाव हमारा सहयोग करें ।
कि शीघ्रातिशीघ्र आप लोग आगे आकर स
सहयोग भेजते हैं
और वह प्रकाशित कि

सहित

ओ३म्

आर्य्योद्देश्यरत्नमाला

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिता

ईश्वरादितत्त्वलक्षणप्रकाशिका

आर्य्यभाषाप्रकाशोज्ज्वला ।

आर्य्यवत्सर १९७२९४९०६४

संवत् २०२० विक्रमीय

दयानन्दाब्द १३९

पंचमावृत्ति] अजमेर [मूल्य ९ न.पै.

प्रकाशक—
आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड
अजमेर

मुद्रक—
शिरीश चन्द्र शिवहरे, एम० ए०
दी फ़ाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस
अजमेर

ओ३म्

आर्य्योद्देश्यरत्नमाला

१—ईश्वर—जिसके गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप सत्य ही हैं, जो केवल चेतनमात्र वस्तु है तथा जो अद्वितीय, सर्वशक्तिमान्, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त आदि सत्यगुण वाला है और जिसका स्वभाव अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मादि है, जिसका कर्म जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना तथा सर्व जीवों को पाप पुण्य के फल ठीक-ठीक पहुँचाना है उसको 'ईश्वर' कहते हैं।

२—धर्म—जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन और पक्षपातरहित न्याय, सर्वहित करना है जो कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित और वेदोक्त होने से सब मनुष्यों के लिये यही एक मानना योग्य है उसको 'धर्म' कहते हैं।

३—अधर्म—जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा को छोड़कर और पक्षपातसहित अन्यायी होके विना परीक्षा करके अपना ही हित करना है जो अविद्या, हठ, अभिमान, क्रूरतादि दोषयुक्त होने के कारण वेदविद्या से विरुद्ध है और सब मनुष्यों को छोड़ने के योग्य है वह 'अधर्म' कहता है।

४—पुण्य—जिसका स्वरूप विद्यादि शुभ गुणों का दान और सत्यभाषणादि सत्याचार का करना है उसको 'पुण्य' कहते हैं।

५—पाप—जो पुण्य से उलटा और मिथ्याभाषणादि करता है उसको 'पाप' कहते हैं।

६—सत्यभाषण—जैसा कुछ अपने आत्मा में हो और असम्भवादि दोषों से रहित करके सदा वैसा ही बोले उसको 'सत्यभाषण' कहते हैं।

७—मिथ्याभाषण—जो कि सत्यभाषण अर्थात् सत्य बोलने से विरुद्ध है उसको 'मिथ्याभाषण' कहते हैं।

८—विश्वास—जिसका मूल अर्थ और फल निश्चय करके सत्य ही हो उसका नाम 'विश्वास' है।

९—अविश्वास—जो विश्वास से उलटा है जिसका तत्त्व अर्थ न हो वह 'अविश्वास' कहाता है।

१०—परलोक—जिसमें सत्यविद्या से परमेश्वर की प्राप्ति हो और उस प्राप्ति से इस जन्म व पुनर्जन्म और मोक्ष में परमसुख प्राप्त होना है इसको 'परलोक' कहते हैं।

११—अपरलोक—जो परलोक से उलटा है जिसमें दुःख विशेष भोगना होता है वह 'अपरलोक' कहाता है।

१२—जन्म—जिसमें किसी शरीर के साथ संयुक्त होके जीव कर्म करने में समर्थ होता है उसको 'जन्म कहते हैं।

१३—मरण—जिस शरीर को प्राप्त होकर जीव क्रिया करता है उस शरीर और जीव का किसी काल में जो वियोग हो जाना है उसको 'मरण' कहते हैं।

१४—स्वर्ग—जो विशेष सुख और सुख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है वह 'स्वर्ग' कहाता है।

१५—नरक—जो विशेष दुःख और दुःख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है उसको 'नरक' कहते हैं।

१६—विद्या—जिससे ईश्वर से लेके पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों का सत्य विज्ञान होकर उनसे यथायोग्य उपकार लेना होता है इसका नाम 'विद्या' है।

१७—अविद्या—जो विद्या से विपरीत है भ्रम, अन्धकार और अज्ञानरूप है इसको 'अविद्या' कहते हैं।

१८—सत्पुरुष—जो सत्यप्रिय, धर्मात्मा, विद्वान्, सबके हित-कारी और महाशय होते हैं वे 'सत्पुरुष' कहाते हैं।

१९—सत्संग, कुसंग—जिस करके झूठ से छूट के सत्य की ही प्राप्ति होती है उसको 'सत्सङ्ग' और जिस करके पापों में जीव फँसे उसको 'कुसङ्ग' कहते हैं।

२०—तीर्थ—जितने विद्याभ्यास, सुविचार, ईश्वरोपासना, धर्मानुष्ठान, सत्य का सङ्ग, ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियतादि उत्तम कर्म हैं, वे सब 'तीर्थ' कहाते हैं क्योंकि इन करके जीव दुःखसागर से तर जा सकते हैं।

२१—स्तुति—जो ईश्वर वा किसी दूसरे पदार्थ के गुण, ज्ञान, कथन, श्रवण और सत्यभाषण करना है वह 'स्तुति' कहाती है।

२२—स्तुति का फल—जो गुण ज्ञान आदि के करने से गुणवाले पदार्थों में प्रीति होती है यह 'स्तुति का फल' कहाता है।

२३—निन्दा—जो मिथ्यज्ञान, मिथ्याभाषण, झूठ में आग्रहादि क्रिया है जिससे कि गुण छोड़कर उनके स्थान में अपगुण लगाना होता है वह 'निन्दा' कहाती है।

२४—प्रार्थना—अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिये परमेश्वर वा किसी सामर्थ्य वाले मनुष्य के सहाय लेने को 'प्रार्थना' कहते हैं।

२५—प्रार्थना का फल—अभिमान का नाश, आत्मा में आर्द्रता, गुणग्रहण में पुरुषार्थ और अत्यन्त प्रीति का होना 'प्रार्थना का फल' है।

२६—उपासना—जिससे ईश्वर ही के आनन्दस्वरूप में अपने आत्मा को मग्न करना होता है उसको 'उपासना' कहते हैं।

२७—निर्गुणोपासना—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, संयोग, वियोग, हलका, भारी, अविद्या, जन्म, मरण और दुःख आदि गुणों से रहित परमात्मा को जानकर जो उसकी उपासना करनी है उसको 'निर्गुणोपासना' कहते हैं।

२८—सगुणोपासना—जिसको सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, शुद्ध, नित्य, आनन्द, सर्वव्यापक, एक, सनातन, सर्वकर्त्ता, सर्वाधार, सर्वस्वामी, सर्वनियंता, सर्वान्तर्य्यामी, मंगलमय, सर्वानन्दप्रद, सर्वपिता, सब जगत् का रचनेवाला, न्यायकारी, दयालु आदि सत्य गुणों से युक्त जानकर जो ईश्वर की उपासना करनी है सो 'सगुणोपासना' कहाती है।

२९—मुक्ति—अर्थात् जिससे सब बुरे काम और जन्म मरणादि दुःखसागर से छूटकर सुखरूप परमेश्वर को प्राप्त होके सुख ही में रहना है वह 'मुक्ति' कहाती है।

३०—मुक्ति के साधन—अर्थात् जो पूर्वोक्त ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना का करना, धर्म का आचरण और पुण्य का करना, सत्सङ्ग, विश्वास, तीर्थसेवन, सत्पुरुषों का संग और परोपकारादि सब अच्छे कामों का करना तथा सब दुष्ट कर्मों से अलग रहना है ये सब 'मुक्ति के साधन' कहाते हैं।

३१—कर्त्ता—जो स्वतन्त्रता से कर्मों का करने वाला है अर्थात् जिसके स्वाधीन सब साधन होते हैं वह 'कर्त्ता' कहाता है।

३२—कारण—जिनको ग्रहण करके करने वाला किसी कार्य व चीज़ को बना सकता है अर्थात् जिसके बिना कोई चीज़ बन नहीं सकती वह 'कारण' कहाता है, सो तीन प्रकार का है।

३३—उपादान कारण—जिसको ग्रहण करके ही उत्पन्न होवे वा कुछ बनाया जाय जैसा कि मिट्टी से घड़ा बनता है उसको 'उपादान कारण' कहते हैं।

३४—निमित्त कारण—जो बनाने वाला है जैसा कुम्हार घड़े को बनाता है इस प्रकार के पदार्थों को 'निमित्त कारण' कहते हैं।

३५—साधारण कारण—जैसे कि दण्ड आदि और दिशा, आकाश तथा प्रकाश हैं इनको 'साधारण कारण' कहते हैं।

३६—कार्य्य—जो किसी पदार्थ के संयोगविशेष से स्थूल होके काम में आता है अर्थात् जो करने के योग्य है वह उस कारण का 'कार्य्य' कहाता है।

३७—सृष्टि—जो कर्त्ता की रचना से कारणद्रव्य किसी संयोग-विशेष से अनेक प्रकार कार्यरूप होकर वर्त्तमान में व्यवहार करने योग्य होती है वह 'सृष्टि' कहाती है।

३८—जाति—जो जन्म से लेके मरणपर्यन्त बनी रहे, जो अनेक व्यक्तियों में एक रूप से प्राप्त हो, जो ईश्वरकृत अर्थात् मनुष्य, गाय, अश्व और वृक्षादि समूह हैं, वे 'जाति' शब्दार्थ से लिये जाते हैं।

३९—मनुष्य—अर्थात् जो विचार के विना किसी काम को न करे उसका नाम 'मनुष्य' है।

४०—आर्य्य—जो श्रेष्ठस्वभाव, धर्मात्मा, परोपकारी, सत्यविद्यादि गुणयुक्त और आर्य्यावर्त्त देश में सब दिन रहने वाले हैं उनको 'आर्य्य' कहते हैं।

४१—आर्य्यावर्त्त देश—हिमालय, विन्ध्याचल, सिन्धु नदी, और ब्रह्मपुत्रा नदी इन चारों के बीच और जहां तक उनका विस्तार है उनके मध्य में जो देश है उसका नाम 'आर्य्यावर्त्त' है।

४२—दस्यु—अनार्य अर्थात् जो अनाड़ी आर्य्यों के स्वभाव और निवास से पृथक्, डाकू चोर हिंसक जो कि दुष्ट मनुष्य है वह 'दस्यु' कहाता है।

४३—वर्ण—जो गुण और कर्मों के योग से ग्रहण किया जाता है वह 'वर्ण' शब्दार्थ से लिया जाता है।

४४—वर्ण के भेद—जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि हैं वे वर्ण कहाते हैं।

४५—आश्रम—जिनमें अत्यन्त परिश्रम करके उत्तम गुणों का ग्रहण और श्रेष्ठ काम किये जायँ उनको 'आश्रम' कहते हैं।

४६—आश्रम के भेद—जो सद्विद्यादि शुभ गुणों का ग्रहण तथा जितेन्द्रियता से आत्मा और शरीर के बल को बढ़ाने के लिये ब्रह्मचारी, जो सन्तानोत्पत्ति और विद्यादि सब व्यवहारों को सिद्ध करने के लिये गृहाश्रम, जो विचार के लिये वानप्रस्थ और जो सर्वोपकार करने के लिये सन्यासाश्रम होता है वे चार आश्रम कहाते हैं।

४७—यज्ञ—जो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्य्यन्त वा जो शिल्प व्यवहार और पदार्थविज्ञान जो कि जगत् के उपकार के लिये किया जाता है उसको 'यज्ञ' कहते हैं।

४८—कर्म—जो मन, इन्द्रिय और शरीर में जीव चेष्टाविशेष करता है, वह 'कर्म' कहाता है; शुभ, अशुभ और मिश्रभेद से तीन प्रकार का है।

४९—क्रियमाण—जो वर्त्तमान में किया जाता है सो 'क्रियमाण कर्म' कहाता है।

५०—सञ्चित—जो क्रियमाण का संस्कार ज्ञान में जमा होता है उसको 'संचित संस्कार' कहते हैं।

५१—प्रारब्ध—जो पूर्व किये हुए कर्मों के सुख दुःख रूप फल का भोग किया जाता है उसको 'प्रारब्ध' कहते हैं।

५२—अनादि पदार्थ—जो ईश्वर जीव और सब जगत् का कारण है ये तीन स्वरूप से अनादि हैं।

५३—प्रवाह से अनादि पदार्थ—जो कार्य्य जगत्, जीव के कर्म और जो इनका संयोग वियोग है ये तीन परम्परा से अनादि हैं।

५४—अनादि का स्वरूप—जो न कभी उत्पन्न हुआ हो, जिस का कारण कोई भी न होवे अर्थात् जो सदा से स्वयंसिद्ध हो वह 'अनादि' कहाता है।

५५—पुरुषार्थ—अर्थात् सर्वथा आलस्य छोड़ के उत्तम व्यवहारों की सिद्धि के लिये मन, शरीर, वाणी और धन से जो अत्यन्त उद्योग करना है उसको 'पुरुषार्थ' कहते हैं।

५६—पुरुषार्थ के भेद—जो अप्राप्त वस्तु की इच्छा करना, प्राप्त का अच्छे प्रकार रक्षण करना, रक्षित को बढ़ाना और बढ़े हुए पदार्थों का सत्यविद्या की उन्नति में तथा सब के हित करने में खर्च करना है इन चार प्रकार के कर्मों को 'पुरुषार्थ' कहते हैं।

५७—परोपकार—अर्थात् अपने सब सामर्थ्य से दूसरे प्राणियों के सुख होने के लिये जो तन, मन, धन से प्रयत्न करना है वह 'परोपकार' कहाता है।

५८—शिष्टाचार—जिस में शुभ गुणों का ग्रहण और अशुभ गुणों का त्याग किया जाता है वह 'शिष्टाचार' कहाता है।

५९—सदाचार—जो सृष्टि से लेके आज पर्यन्त सत्पुरुषों का वेदोक्त आचार चला आया है कि जिसमें सत्य का ही आचरण और असत्य का परित्याग किया है उसको 'सदाचार' कहते हैं।

६०—विद्यापुस्तक—जो ईश्वरोक्त सनातन सत्य विद्यामय चार वेद हैं उनको 'विद्या-पुस्तक' कहते हैं।

६१—आचार्य—आचार्य श्रेष्ठ आचार को ग्रहण कराके सब विद्याओं को पढ़ा देवे उसको 'आचार्य्य' कहते हैं।

६२—गुरु—जो वीर्यदान से ले के भोजनादि कराके पालन करता है, इससे पिता को 'गुरु' कहते हैं और जो अपने सत्योपदेश से हृदय का अज्ञानरूपी अन्धकार मिटा देवे उसको भी 'गुरु' अर्थात् 'आचार्य' कहते हैं।

६३—अतिथि—जिसकी आने और जाने में कोई भी निश्चित तिथि न हो तथा जो विद्वान् होकर सर्वत्र भ्रमण करके प्रश्नोत्तर के उपदेश से सब जीवों का उपकार करता है उस को 'अतिथि' कहते हैं।

६४—पञ्चायतनपूजा—जीते माता, पिता, आचार्य, अतिथि और परमेश्वर को जो यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करना है उसको 'पञ्चायतनपूजा' कहते हैं।

६५—पूजा—जो ज्ञानादि गुणवाले का यथायोग्य सत्कार करना है उसको 'पूजा' कहते हैं।

६६—अपूजा—जो ज्ञानादिरहित जड़ पदार्थ और जो सत्कार के योग्य नहीं हैं उसका जो सत्कार करना है वह 'अपूजा' कहाती है।

६७—जड़—जो वस्तु ज्ञानादि गुणों से रहित है उसको 'जड़' कहते हैं।

६८—चेतन—जो पदार्थ ज्ञानादि गुणों से युक्त है उसको 'चेतन' कहते हैं।

६९—भावना—जो जैसी चीज़ हो उसमें विचार से वैसा ही निश्चय करना कि जिसका विषय भ्रमरहित हो अर्थात् जैसे को वैसा ही समझ लेना उसको 'भावना' कहते हैं।

७०—अभावना—जो भावना से उलटी हो अर्थात् जो मिथ्याज्ञान से अन्य निश्चय मान लेना है, जैसे जड़ में चेतन और चेतन में जड़ का निश्चय कर लेना है उसको 'अभावना' कहते हैं।

७१—पण्डित—जो सत् असत को विवेक से जानने वाला, धर्म्मात्मा, सत्यवादी, सत्यप्रिय, विद्वान् और सबका हितकारी है उसको 'पण्डित' कहते हैं।

७२—मूर्ख—जो अज्ञान, हठ, दुराग्रहादि दोष सहित है उसको 'मूर्ख' कहते हैं।

७३—ज्येष्ठकनिष्ठव्यवहार—जो बड़े और छोटों से यथायोग्य परस्पर मान्य करना है उसको 'ज्येष्ठकनिष्ठव्यवहार' कहते हैं।

७४—सर्वाहित—जो तन, मन और धन से सब के सुख बढ़ाने में उद्योग करना है उसको 'सर्वाहित' कहते हैं।

७५—चोरीत्याग—जो स्वामी की आज्ञा के विना किसी के पदार्थ का ग्रहण करना है वह 'चोरी' और उसका छोड़ना 'चोरीत्याग' कहाता है।

७६—व्यभिचारत्याग—जो अपनी स्त्री के विना दूसरी स्त्री के साथ गमन करना और अपनी स्त्री को भी ऋतुकाल के विना वीर्यदान देना तथा अपनी स्त्री के साथ भी वीर्य का अत्यन्त नाश करना और युवावस्था के विना विवाह करना है यह व्याभिचार कहाता है उसको छोड़ देने का नाम 'व्यभिचारत्याग' है।

७७—जीव का स्वरूप—जो चेतन, अल्पज्ञ, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान गुणवाला तथा नित्य है वह 'जीव' कहाता है।

७८—स्वभाव—जिस वस्तु का जो स्वाभाविक गुण है जैसे कि अग्नि में रूप और दाह अर्थात् जब तक वह वस्तु रहे तबतक उसका वह गुण भी नहीं छूटता इसलिये इसको 'स्वभाव' कहते हैं।

७९—प्रलय—जो कार्य्य जगत् का कारणरूप होना अर्थात् जगत् का करनेवाला ईश्वर जिन-जिन कारणों से सृष्टि बनाता है कि अनेक कार्यों को रच के यथावत् पालन करके पुनः कारण-रूप करके रखता है उसका नाम 'प्रलय' है।

८०—मायावी जो छल, कपट, स्वार्थ में ही प्रसन्नता, दम्भ, अहङ्कार, शठतादि दोष हैं और जो मनुष्य इससे युक्त हो वह 'मायावी' कहाता है।

८१—आप्त—जो छलादि दोषरहित, धर्मात्मा, विद्वान्, सत्योपदेष्टा सब पर कृपादृष्टि से वर्त्तमान होकर अविद्यान्धकार का नाश करके अज्ञानी लोगों के आत्माओं में विद्यारूप सूर्य्य का प्रकाश सदा करे उसको 'आप्त' कहते हैं।

८२—परीक्षा—जो प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण वेदविद्या आत्मा की शुद्धि और सृष्टिक्रम से अनुकूल विचार के सत्यासत्य को ठीक-ठीक निश्चय करना है उसको 'परीक्षा' कहते हैं।

८३—आठ प्रमाण—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव ये 'आठ प्रमाण' हैं इन्हीं से सब सत्यासत्य का यथावत् निश्चय मनुष्य कर सकता है।

८४—लक्षण—जिससे जाना जाय जो कि उसका स्वाभाविक गुण है जैसे कि रूप से अग्नि जाना जाता है इसको 'लक्षण' कहते हैं।

८५—प्रमेय—जो प्रमाणों से जाना जाता है जैसे कि आँख का प्रमेय रूप अर्थ है जो कि इन्द्रियों से प्रतीत होता है उसको 'प्रमेय' कहते हैं।

८६—प्रत्यक्ष—जो प्रसिद्ध शब्दादि पदार्थों के साथ श्रोत्रादि इन्द्रिय और मन के निकट सम्बन्ध से ज्ञान होता है उसको 'प्रत्यक्ष' कहते हैं।

८७—अनुमान—किसी पूर्व दृष्ट पदार्थ के एक अङ्ग को प्रत्यक्ष देख के पश्चात् उसके अदृष्ट अङ्गों का जिससे यथावत् ज्ञान होता है उसको 'अनुमान' कहते हैं।

८८—उपमान—जैसे किसी ने किसी से कहा कि गाय के तुल्य नील गाय होती है ऐसे जो उपमा से सादृश्य ज्ञान होता है उसको 'उपमान' कहते हैं।

८९—शब्द—जो पूर्ण आप्त परमेश्वर और आप्त मनुष्य का उपदेश है उसी को 'शब्दप्रमाण' कहते हैं।

९०—ऐतिह्य—जो शब्दप्रमाण के अनुकूल हो जो कि असम्भव और झूठ लेख न हो उसी को 'ऐतिह्य' (इतिहास) कहते हैं।

९१—अर्थापत्ति—जो एक बात के कहने से दूसरी विना कहे समझी जाय उसको 'अर्थापत्ति' कहते हैं।

९२—सम्भव—जो बात प्रमाण, युक्ति और सृष्टिक्रम से युक्त हो वह 'सम्भव' कहता है।

९३—अभाव—जैसे किसी ने किसी से कहा कि तू जल ले आ उसने वहां देखा कि यहां जल नहीं है परन्तु जहां जल है वहां से ले आना चाहिये इस अभाव निमित्त से जो ज्ञान होता है उसे 'अभाव' प्रमाण कहते हैं।

९४—शास्त्र—जो सत्य विद्याओं के प्रतिपादन से युक्त हों और जिस करके मनुष्यों को सत्य-सत्य शिक्षा हो उसको 'शास्त्र' कहते हैं।

९५—वेद—जो ईश्वरोक्त सत्य विद्याओं से युक्त ऋक्संहितादि चार पुस्तक हैं जिनसे मनुष्यों को सत्यासत्य का ज्ञान होता है उनको 'वेद' कहते हैं।

९६—पुराण—जो प्राचीन ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मणादि ऋषि मुनिकृत सत्यार्थ पुस्तक हैं उन्हीं को 'पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी' कहते हैं।

९७—उपवेद—जो आयुर्वेद वैद्यकशास्त्र, जो धनुर्वेद शस्त्रास्त्र-विद्या, राजधर्म्म जो गान्धर्ववेद गानशास्त्र और अर्थवेद जो शिल्पशास्त्र हैं इन चारों को 'उपवेद' कहते हैं।

९८—वेदांग—जो शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, आर्ष सनातन शास्त्र हैं इनको 'वेदाङ्ग' कहते हैं।

९९—उपांग—जो ऋषि मुनिकृत मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त छः शास्त्र हैं इनको 'उपाङ्ग' कहते हैं।

१००—नमस्ते—मैं तुम्हारा मान करता हूँ।

वेदरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे विक्रमार्कस्य भूपतेः।
नमस्ये सितसप्तम्यां सौम्ये पूर्तिमगादियम् ॥ १ ॥

श्रीयुत महाराजा विक्रमादित्यजी के १९३४ के संवत् में श्रावण महीने के शुक्लपक्ष ७ सप्तमी बुधवार के दिन स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने आर्य भाषा में सब मनुष्यों के हितार्थ यह आर्य्योद्देश्यरत्नमाला पुस्तक प्रकाशित की ॥

महर्षिकृत ग्रंथों के सस्ते व सुलभ संस्करण

सत्यार्थप्रकाश (अजिल्द)	२.२५	गोकरुणानिधि	०.१०
सत्यार्थप्रकाश (सजिल्द)	३.२५	संस्कारविधि बढ़िया	१.१२
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका अजि० २.५०, सजि०	३.००	हवनमंत्राः	०.०५
		नित्यकर्मविधि	०.०६
व्यवहारभानु	०.२०	आर्योद्देश्यरत्नमाला	०.०९
पंचमहायज्ञ विधि	०.२०	संस्कृतवाक्यप्रबोध	०.५०

अन्य उपयोगी पुस्तकें

बाल सत्यार्थप्रकाश	१.२५	दयानन्द-वाणी	१.५०
वैदिक मनोविज्ञान	०.३७	दयानन्द-वचनामृत	०.३७
वैदिक अध्यात्मसुधा	०.६२	भयानक षड्यंत्र	०.२५
रामायणदर्पण	१.२५	खतरे का घण्टा	०.५०
महाभारत शिक्षा-सुधा	१.५०	खतरे का बिगुल	०.६२
कर्तव्य-दर्पण	१.००	हमारे आदर्श	१.२५
सत्संग यज्ञ-विधि	०.३७	युद्धनीति और अहिंसा	१.२५
सामान्य ज्ञान ४ भागों में, ०.२५, ०.३७, ०.४४,	०.५०	स्वस्थ-जीवन	१.२५
		जीवन की नींव	२.००
साहित्य-प्रवेश ४ भागों में, ०.४४, ०.४४, १.००,	१.००	गरुड़ पुराण की आलोचना	०.५०
इतिहास की कहानियाँ	०.५६	आर्यपर्व-पद्धति	१.५०
खूनी इतिहास	०.७५	सत्यधर्म-विचार	०.२५
कृष्ण-चरित	३.२५	वेदविरुद्ध-मत-खंडन	०.३५

हैदराबाद सत्याग्रह का रक्तरंजित इतिहास — २.५०

कर्म-मीमांसा—ले० आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री — २.२५

सन्मार्ग-दर्शन—ले० स्वामी सर्वदानन्दजी — सजिल्द ४.००

पुस्तकें मिलने का पता—

आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर।